

वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के ऐतिहासिक तथ्य



डॉ रजनीश कुमार
वार्ड नं 06, डुमरा, सीतामढ़ी, बिहार,
भारत।

वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार एवं विकास की प्रक्रिया के कुछ संकेत हमे प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व विषयक अवशेषों से प्राप्त होते हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इस धर्म के अप्रत्यक्ष संकेत मिलते हैं। चौथी शती ई0 पू0 में हुए यूनानी आक्रमण के समय यह धर्म किसी-न-किसी रूप में प्रचलित था। तीसरी शती ई0 पू0 के अशोक के अभिलेखों में इस धर्म के उल्लिखित न होने से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह धर्म अज्ञात था। भण्डारकर ने संकर्षण – वासुदेव के मन्दिर के अवशेषों को नगरी (राजस्थान) नामक स्थान के उत्खनन में प्राप्त किया था, जिसे उन्होंने ई0 पू0 चौथी शती का माना था, उसके प्रस्तर आवरण को ई0 पू0 शताब्दी का माना था। इसी प्रकार विष्णु का एक प्राचीनतम मन्दिर बेसनगर (विदिशा) में भी मिला है। इसी मन्दिर के निकट ई0 पू0 द्वितीय शताब्दी में तक्षशिला के यवन राजा एण्टीआल्कीडस के दूत हेलियोडोरस ने, जो विदिशा आया था, अपने वैष्णव धर्म अपनाने के उपलक्ष्य में गरुड़ – ध्वज स्थापित किया था। इस गरुड़ध्वज-स्तम्भ को सर्वप्रथम कनिंघम ने 1877 ई0 में खोज कर निकाला था और मार्शल ने 1908–09 ई0 में इस स्तम्भ पर उल्लिखित लेख का स्पष्टीकरण प्रकाशित किया थां तदनन्तर वहाँ के प्राचीन विष्णु मन्दिर की खोज का असफल प्रयास लेक और भण्डारकर ने किया। बहुत समय बाद 1964–65 में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अधीक्षक महेश्वरी दयाल खरे ने विष्णु के इस प्राचीनतम मन्दिर का सफलतापूर्वक उत्खनन किया। यह मन्दिर हेलियोडोरस स्तम्भ के समकालीन मन्दिर के पहले का है। अतः इस मन्दिर का समय ई0 पू0 की तीसरी शताब्दी लगभग निर्धारित किया गया है, जो बाढ़ से पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। वासुदेव का यह प्राचीनतम मन्दिर धार्मिक, ऐतिहासिक एवं कला की दृष्टि से महत्त्व का है।

हेलियोडोरस स्तम्भ दूसरी शताब्दी के बने हुए मन्दिर का समकालीन रहा है। इस स्तम्भ के अतिरिक्त इस मन्दिर के सामने समकालीन सात स्तम्भ और थे। इस प्रकार कुल

आठ स्तम्भ थे, जिनमें सात एक पंक्ति में उत्तर से दक्षिण की ओर मन्दिर के पूर्व में थे और आठवाँ चौथे स्तम्भ के पूर्वी ओर स्थापित किया गया था।

आठ स्तम्भों का विष्णु मन्दिर के सम्मुख स्थापित किया जाना विशेष महत्त्व रखता है। प्रत्येक स्तम्भ का सिर गरुड़, ताड़पत्र, मकर आदि ध्वजों से सुशोभित रहा होगा। इनमें से कुछ के अवशेष यहाँ प्राप्त हुए हैं।

मथुरा में पाये गये शिलालेख से भी विष्णु के एक प्राचीन मन्दिर का ज्ञान होता है, यद्यपि उक्त मन्दिर के अवशेष अभी नहीं मिलते हैं। वैसे मथुरा इस धर्म का गढ़ रहा है। अतः वहाँ इस धर्म से सम्बन्धित अवशेषों का मिलना स्वाभाविक है।

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित घोसुण्डी से उपलब्ध एक लेख में अश्वमेघ यज्ञ करने वाले भागवत सम्प्रदाय के एक भक्त द्वारा संकर्षण और वासुदेव की पूजा के लिए एक 'पूजाशिला—प्राकार' बनवाने का उल्लेख है। घोसुण्डी के इस लेख के अनुसार ₹५० पूरा तक राजस्थान क्षेत्र में भागवत वैष्णव धर्म का पर्याप्त प्रसार हो चुका था।

महाराष्ट्र स्थित नानाधाट से ₹५० पूरा पहली शताब्दी का एक अभिलेख मिला है, जो कुमार वेदश्री व शक्तिश्री की माता रानी नायनिका द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था। रानी नायनिका ने अपने पति सातवाहन वंशीय राजा सातकर्णी प्रथम की सहधर्मिणी के रूप में एक राजसूय और दो अवश्मेघ यज्ञों का अनुष्ठान किया था। इस अभिलेख का प्रारंभ धर्म, इन्द्र के साथ संकर्षण—वासुदेव का, चन्द्र, सूर्य तथा चार दिक्पालों (यम, वरुण, कुबेर, व वासव) की स्तुति के साथ किया गया है। यहाँ संकर्षण और वासुदेव की स्तुति किया जाना इस बात का प्रमाण है कि इस काल में महाराष्ट्र क्षेत्र में भागवत धर्म का प्रचार हो चुका था।

महाराष्ट्र के साथ ही दक्षिण भारत में भी भागवत वैष्णव धर्म का प्रचार अब तक हो चुका था। कृष्णा जिला स्थित चिन्न नामक स्थान से दूसरी शती ₹५० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख का प्रारंभ वासुदेव की स्तुति से किया गया है, जो इस क्षेत्र में भागवत वैष्णव धर्म के प्रसार का द्योतक है। इसी प्रकार गुन्दूर जिले से पल्लवों का एक प्राकृत अभिलेख मिला है, जिसमें भगवत्नारायण के देवकुल का उल्लेख मिलता है। इससे दक्षिण में भागवत वैष्णव धर्म के प्रसार का ज्ञान होता है। भागवत पुराण में कहा गया है कि कलियुग में नारायण में भवित रखने वाले लोग होंगे पर, दक्षिण में ये बड़ी संख्या में होंगे। यह उल्लेख दक्षिण में भागवत वैष्णव धर्म के प्रसार की ओर संकेत करता है।

मध्यदेश में इस धर्म के प्रसार के कुछ संकेत मिलते हैं। यहाँ स्थित पांचाल (रुहेलखण्ड) के मित्रवंशीयराजा विष्णु के कुछ ताँबे के सिक्के मिले हैं, जिन पर विष्णु की प्रतिमा अंकित है और ये सिक्के ईस्वी सन के प्रारम्भ के माने जाते हैं। स्पष्ट है कि पहली

शती ई० में वैष्णव धर्म मध्यदेश में प्रचलित था, यही कारण है कि विष्णु को सिक्कों पर स्थान दिया गया है। प्रायः इसी काल में कुषाण वंश की स्थापना हुई। यवनों की भाँति कुषाण भी वैष्णव धर्म में रुचि रखते थे, इसकी जानकारी हमें विभिन्न साक्ष्यों से मिलती है। कुषाणनरेश कनिष्ठ की वैष्णव प्रवृत्ति स्पष्ट होती है और भागवत वैष्णव धर्म के प्रचार का ज्ञान होता है।

वैष्णव धर्म का चरम विकास गुप्त राजाओं के शासन काल (319–550ई०) में हुआ। गुप्त नरेश वैष्णव धर्म को मानने वाले थे तथा उन्होंने इसे राजधर्म बनाया था। विष्णु का वाहन गरुड़ गुप्तों का राजचिह्न था। प्रयाग लेख से सूचित होता है कि गुप्त शासनपत्रों के ऊपर गरुड़ की मुद्रा (सील) लगी होती थी। विष्णु की उपासना में अनेक मन्दिरों एंवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। मेहरौली लेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विष्णुपद पर्वत पर विष्णुध्वज की स्थापना करवायी थी। जूनागढ़ लेख से भी पता चलता है कि चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तट पर विष्णु की मूर्ति स्थापित करवायी थी। देवगढ़ की मूर्ति में विष्णु को शेषशय्या पर विश्राम करते हुए दिखाया गया है। गुप्तकाल में लिखे गये पुराणों में विष्णु के अवतारों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस युग के कोशकार अमर सिंह ने अपने ग्रन्थ में विष्णु के 39 नामों का उल्लेख किया।

गुप्तों के बाद भी वैष्णव मत का प्रचार-प्रसार यथावत् चलता रहा। हर्षवर्धन के समय में भी वैष्णव धर्म उन्नत दशा में था। बाण ने अपने हर्षचरित में भागवत और पांचरात्र सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। बाण की कादम्बरी में श्रीकृष्ण के आख्यान भी मिलते हैं। मध्यकाल के विभिन्न राजपूत वंशों ने वैष्णव धर्म को पर्याप्त प्रश्रय दिया और मध्यकाल की जनता ने हृदय से इस धर्म का स्वागत किया। फलतः इस काल में वैष्णव धर्म एक प्रधान धर्म बना गया और यह भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में प्रमुखता से फैला। पूर्व में बंगाल के पाल राजा धर्मपाल के काल में निर्मित एक वैष्णव मन्दिर का उल्लेख एक अभिलेख में मिलता है। पाल राजा नारायण पाल के काल के एक अभिलेख में गरुड़ ध्वज का उल्लेख मिलता है।

इसी प्रकार हिन्दू मध्ययुग के पूर्वार्ध के प्रमुख शासक प्रतिहारों ने भी वैष्णव धर्म को पर्याप्त प्रश्रय दिया था। प्रतिहारवंशी राजा भोज के एक अभिलेख में विष्णु को नमन करने के अनन्तर उन्हें निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में कहा गया है। कन्नौज के प्रतिहारों के शासन-काल में अपने वैष्णवधर्मी मन्दिरों एंवं मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिनसे इस धर्म की विकसित स्थिति का ज्ञान होता है।

हिन्दू मध्ययुग के उत्तरार्ध में भी वैष्णव धर्म विकासमान बना रहा। इस काल में बहुत से विष्णु- मन्दिर का निर्माण हुआ, जिनका उल्लेख अभिलेखों में भी मिलता है। चन्देल राजाओं ने खजुराहों में विष्णु के कई मन्दिर बनवाये थे। चेदि, परमार और सेन राजाओं के शासनकाल में भी विष्णु के कई मन्दिर तथा मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। इस काल की विष्णु-मूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं तथा उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पदम हैं। साथ-ही-साथ लक्ष्मी और गरुड़ की मूर्तियाँ भी निर्मित करवायी गयी थी। विष्णु के दस अवतारों की कथा का व्यापक प्रचलन हुआ तथा प्रत्येक की मूर्तियों का निर्माण हुआ। समाज में वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक व्रतों एवं अनुष्ठानों का भी प्रचलन हो गया।

उत्तर भारत के ही समान दक्षिण भारत में भी वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। संगम-साहित्य से पता चलता है कि ईसा की प्रथम शती में यह तमिल प्रदेश का एक महत्वपूर्ण धर्म था। दक्षिण भारत में विष्णु के कई मन्दिर तथा मूर्तियाँ मिलती हैं। वेंगी के पूर्वी चालुक्य शासक वैष्णव-मतावलम्बी थे और उनका राजचिह्न गुप्तों की तरह गरुड़ था। उनके लेखों में वाराह की उपासाना मिलती है। राष्ट्रकूट काल में भी दक्षिणापथ में वैष्णव धर्म का विकास हुआ। यद्यपि राष्ट्रकूट शासक जैनमत के पोषक थे फिर भी दंतिदुर्ग ने एलोरा में दशावतार का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था, जिसमें विष्णु के दश अवतारों की कथा मूर्तियों में अंकित है। दक्षिण में इस धर्म को लोकप्रिय बनाने में उन सन्तों का बड़ा योगदान रहा है, जो आलवार नाम से विख्यात हैं। इन आलवार सन्तों की संख्या बारह बतायी गयी है। ये सन्त पण्डित व विद्वान न होकर भक्त हुए करते थे। इन्होंने भजन-कीर्तन, नामोच्चारण, मूर्ति-दर्शन आदि के माध्यम से वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनके उपदेशों में दार्शनिक जटिलता नहीं थी। वे मोक्ष के लिए ज्ञान को नहीं बल्कि विष्णु की भक्ति को आवश्यक बतलाते थे। उनके गीत व रचनाएँ नलयिरादिव्यप्रबंधम् में संग्रहित हैं।

दक्षिण में वैष्णव गुरुओं के दो वर्ग मिलते हैं— आलवार और आचार्य। इनमें आलवार सन्त वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार भक्ति और आत्मार्पण के गीतों द्वारा करते थे और आचार्य लोग युक्ति एवं तर्क से अपने वैष्णव- सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। वैष्णव आचार्यों में सबसे पहले नाथमुनि हुए जिन्होंने 'श्रीवैष्णव' सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके उत्तराधिकारी यमुनाचार्य हुए, जिन्होंने विशिष्टाद्वैत दर्शन की स्थापना की और जिसका अत्यधिक प्रचार उनके शिष्य रामानुज ने किया। रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए भक्तिवाद का मार्ग प्रशस्त किया। रामानुज के बाद वैष्णव- सम्प्रदाय दो उपसम्प्रदायों में विभक्त हो गया, जिनमें एक के प्रणेता मध्वाचार्य

और दूसरे के निम्बार्काचार्य हुए। वैष्णव सम्प्रदायों में बल्लभ सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय है। इसके संस्थापक बल्लभाचार्य थे।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वैष्णव धर्म का प्रसार भारत में भवित और ज्ञान के मार्ग को प्रशस्त करने के उद्देश्य से हुआ था, जिसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों की उपासना और साधना भी निहित थी। यह सही है कि पूर्ववर्ती काल में वासुदेव कृष्ण के पूजन का अधिक विस्तार हुआ किन्तु, मध्ययुग में कृष्णोपासक और रामोपासक दोनों सम्प्रदायों का समानान्तर गति से प्रसार हुआ। उत्तर भारत में इसका समस्त श्रेय रामोपासक रामानन्द और तुलसीदास तथा कृष्णोपासक बल्लभ, सूरदास और मीराबाई को है। बंगाल और उड़ीसा में चैतन्य और उनके अनुयायियों ने कृष्ण की लीलाओं का प्रचार किया। पंजाब में गुरुनानक ने सिख धर्म का प्रवर्तन कर आशा और विश्वास का नया दीप जलाया। भवित का नया स्वरूप खींचा। राजस्थान में मीराबाई ने कृष्णभवित के माध्यम से नवीन उत्साह उत्पन्न किया। महाराष्ट्र में नामदेव और तुकाराम के प्रयास से कृष्ण की उपासना घर-घर फैली। परवर्ती उपासकों और चिन्तकों ने जनभाषा को अभिव्यक्ति का प्रधान आधार मानकर अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे साधारण जनता आत्मा, परमात्मा ओर ब्रह्म-संबंधी गूढ़ विषयों को समझ सकने में समर्थ हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थः—

1. प्रो० डी० आर० भण्डारकर — द आर्क्योलाजिकल रिमेन्ज एण्ड एक्सक्वेशन्स एट नगरी 1920, पृ० 119.
2. सर जॉन मार्शल —जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1908—09, अंक 26.
3. खरे महेश्वरी दयाल — इतिहास अनुशीलन, जून 1967, प्रथम अंक, पृ० 116—17
4. खरे महेश्वरी दयाल — इतिहास अनुशीलन, जून 1967, प्रथम अंक, पृ० 18—19
5. बनर्जी जितेन्द्र नाथ — हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० 395
6. विंटरनित्ज — ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर ग्रन्थ, पृ० 525
7. नीलकंठ शास्त्री — दक्षिण भारत का इतिहास
8. के० सी० श्रीवास्तव — प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति